नागरिकता का यूनानी दृष्टिकोण

राकेश कुमार सिंह,
शोधार्थी,
राजनीतिशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

शोध सारांश

पिछली चार दशकों में नागरिकता की अवधारण एक नई चर्चा और चिन्तन का विषय बन गई है। नागरिकता के स्वरूप पर पुनर्विचार हो रहा है और यह सकारण है। उदावादी प्रजातांत्रिक देशों जिनमें यूरोप के विकसित देश भी शामिल हैं, के नागरिकों में सार्वजनिक दायित्व के प्रति बड़ती उदासीनता, यूरोप तथा विश्व के अन्य भागों के देशों में मूल निवासियों एवं प्रवासी नागरिकों की बढ़ती जागृति और पर्यावरण जैसे वैश्विक महत्व के प्रश्नों के प्रति विभिन्न राष्ट्र के लोगों की बढ़ती जिम्मेदारी– इन सभी नवीन प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनों ने नागरिकता की धारणा को प्रभावित और रूपान्तरित किया है। बीसवीं सदी के प्रमुख राजनीतिक चिन्तक जॉन राल्स भी यह घोषित कर चुके हैं कि किसी राज्य की सुव्यवस्था केवल उसकी बुनियादी संस्थओं के न्यायपूर्ण होने पर ही निर्भर नहीं करती वरन् वह नागरिक की गुणवत्ता पर भी आश्रित होती है। एक अन्य समकालीन चिन्तक हेबरमास संवैधानिक व्यवस्था का आधार स्तम्भ सक्रिय और संवेदनशील नागरिकता को मानते हैं।

वर्तमान नागरिक चिन्तन की जड़ें यूनानी चिन्तन में निहित है यद्यपि यूनान में नागरिक वही माना जाता था जिसके पास अवकाश हो और जो शासन कार्य में भागीदारी करता हो। प्रस्तुत शोध–पत्र में यूनानी नागरिकता का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

Keywords: *नागरिकता, पोलिस, समुदाय, शरीरवादी सिद्धान्त, तात्विक, सद्गुण, संरक्षण, वंशानुक्रम, अवकाश, अस्खौलिया।*

नागरिकता की संकल्पना उस समय से प्रारम्भ मानी जा सकती है, जब सर्वप्रथम मानव ने एक राजनीतिक समुदाय (राज्य) के रूप में रहना प्रारम्भ किया होगा। उस प्रारम्भिक राजनीति समुदाय मे व्यवहार के मापदण्डो एवं दायित्यों का निर्धारण जिन आधारों पर किया जाता रहा होगा, उसे मोटे तौर पर 'नागरिकता' कह सकते है। पाश्चात्य राजनीतिक इतिहास में नागरिकता सम्बन्धी विवरण यूनानी नगर –राज्यों के साथ स्पष्ट रूप से प्राप्त होते है। नागरिकता ही क्यों, नागरिकता सहित वर्तमाान में प्रचलित तमाम आधुनिक आदर्शो का चिन्तन उस समय प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि प्राचीन यूनानी नगर ;च्वसपेद्ध व्यवहार तथा सिद्धांत दोनों की दृष्टि सें आधुनिक राज्य का प्रजनक और प्रर्वतक रहा है। सारतः प्रोफेसर सेबाइन का कथन विचारणीय है कि''आज कल के अधिकांश राजनीतिक आदर्शो या कम से कम अनकी परिभाषाओं का श्रीगणेश उसी समय सें होने लगता है। जब से यूनानी विचारको ने नगर राज्य की संस्थाओं के संदर्भ में

चिन्तन प्रारम्भ किया।" यद्यपि सेबाइन स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि "इस लम्बे राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में इन शब्दों ;ज्मतउेद्ध का अर्थ भी समय–समय पर बदलता है, जिसे उन संस्थाओं की, जिनके द्वारा इन आदर्शों को सिद्ध किया जाता था और उस समाज की जिसमें ये संस्थायें कार्य करती थी, की पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है।"

सेबाइन का यह तर्क सर्वथा उपयुक्त है। नागरिकता कि अवधारणा में भी प्राचीनकाल, मध्यकाल, आधुनिक युग एवं समकालीन में विभिन्न परिस्थितियों एवं कालानुक्रमों के अनुरूप बदलाव आता रहा है। यही नहीं, वर्तमान में भले ही किन्ही देश द्वय की नागरिकता की सैद्धांतिक संकल्पना एक जैसी क्यो न हो किंतु व्यवहारिक धरातल पर वह तद् राष्ट्र की संस्थाओं, सामाजिक–राजनैतिक सांस्कृतिक एवं मूल्यों के सापेक्ष बदल जाती है अथवा अन्तर परिलक्षित होता है। बावजूद इसके व्यापक बदलाव की इस कड़ी में अंतिम कड़ी प्रारम्भिक कड़ी से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होती ही है। अतः किसी भी राजनीति संकल्पना को ठीक से समझने के लिए उसके मूल में जाना ही होगा। प्रोफेसर अर्नेस्ट बार्कर इस बात को बड़े सुन्दर शब्दों में कहते है कि ''यूनानी नागरिकता की समस्याओं का आज भी हमसे समबन्ध है क्योंकि वे हमारी समस्यायें है, और वे हमारी समस्यायें इसलिए है कि यूनानियों का अनुभव हमारें प्राणों में समा गया है और हमारे अस्तित्व का अंग बन गया है।"

यद्यपि यूनानी नगर राज्यों की जनसंख्यकीय एवं भौतिक आकार के संदर्भ में विद्वानों द्वारा दिये गये तथ्यों में अंतर ज्यादा है। फिर भी कम से कम आदर्श के स्थानों पर यूनानी नगर राज्यों के आकार के बारे मे यह माना जाता है। इनका आकार इतना छोटा हो कि इनके नागरिक एक दूसरे से परिचित हों। साथ ही ये इतने बड़े होने चाहिए कि अपनी भैतिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं के संदर्भ मे आत्म निर्भर हो। सिनक्लेयर भी पोलिस की तीन विशेषतायें विस्तार (इतना हो कि शासन प्रबन्ध की व्यवस्था हो सके और इतना न हो कि इसके सदस्य एक दूसरें से अपरिचित रहें) आत्म निर्भरता व राजनीतिक स्वतंत्रता बतातें है।

यूनानी नगर राज्य सामान्यतः दो भागों में विभक्त होते थे। इनकी आधी जनसंख्या नगर में निवास करती थी और आधी गाँव में रहती थी। प्रत्येक नगर के चारों ओर का क्षेत्रफल उसके अपने अधिकार में होता था। भूमि साधारणताः छोटे छोटे जागीरदारों मे बॅटी होती थी जिन पर नागरिकों का स्वामित्व था ग्रामीण क्षेत्र में किसी नागरिक की अपनी जागीर उसका आश्रय होती थी, किंतु वह उसकी गतिविधि का प्रमुख स्थल नही होता था। ऐसे कार्य वह नगर में करता था जहाँ वह राजनीतिक, न्यायिक या सैनिक कर्तव्य पूरा करने, धार्मिक उत्सवों या नाटकों में हिस्सा लेने , व्यायामशाला में व्यायाम करने या साथी नागरिकों के साथ वार्तालाप करने ही आ जाया करता था। तात्पर्य है कि उदर व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति गाँव करते थे जबकि नागरिक गतिविधियों का केन्द्र तो नगर ही थे।

ग्रीक युगीन लगभग सभी गम्भीर चिन्तक ग्रीक नगर राज्य के सावयव रूप को स्वीकार करते है। वे राज्य को एक प्राणधारी शरीर के रूप में देखते हैं, जिसमें प्रत्येक अंग की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। सुकरात भी समाज के निर्माण में दो तत्वों की महती भूमिका स्वीकार करते है– प्रथम, उनकी परस्पर आवश्यकतायें और द्वितीय, दक्षता संबंधी भिन्नतायें । विभिन्न व्यक्ति भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में अच्छे होते हैं और यह अच्छा होगा कि प्रत्येक तद् संबंधी विधा में अपने विकास हेतु केन्द्रित रहे। इस संदर्भ में समाज / समुदाय इस प्राकृतिक विकास का मार्गदर्शक है। प्लेटों भी कहते है कि वर्ग त्रय यदि अपने गुणों के आधार पर अपना कार्य निष्ठा के साथ

सम्पादित करते हैं, तो व्यक्ति एवं राज्य दोनों स्तरों पर न्याय की स्थापना होती है। प्लेटो का प्रसिद्ध कथन है कि ''राज्य व्यक्ति का वृहद रूप है''। वे कहते है कि राज्य एक शरीर है इसका संपूर्ण रूप अंगों से महान है और व्यक्ति से गुरूत्तर है। राज्य के इस शरीरवादी सिद्धान्त को ही स्वाभाविक तर्क सिद्धांत कहते है। प्लेटों सर्वोत्तम राज्य उसे मानते हैं जहां सुमति हो और सुमति वहाँ होती है जहाँ सुख–दुःख साझे हो जायें, जहाँ हर्ष और विषाद के अवसरों पर सारे नागरिक उल्लास या व्यथा में मग्न हो जायें। इस स्थिति की तुलना व्यक्ति की स्थिति से करते हुए कहते हैं कि जैसे यदि उसके शरीर में उँगली को ही चोट आ जाती है तो सारा शरीर उसकी आत्मा की ओर खिंचा चला जाता है, क्योंकि वह उसके भीतर की शासन–व्यवस्था का केन्द्र है। वहीं चोट अनुभव की जाती है और घायल अंग के प्रति सारे अंग में सहानुभूति उमड़ जाती है, और हम कहते हैं कि उस ऊँगली में दर्द है। यही बात शरीर के अन्य किसी भी हिस्से पर लागू होती है, चाहे उस अंग के पीड़ित होने पर दुःख का अनुभव हो या चैन मिलने पर सुख का। अरस्तू भी राज्य के शरीरवादी सिद्धांत को स्वीकार करता है। उसके मतानुसार राज्य के लिए व्यक्ति उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि शरीर के लिए उसका अंग–अंग। नागरिक और शारीरिक अंग समानरूपेण अपूर्ण हैं। अरस्तू ने लिखा है, ''राज्य व्यक्ति से पृथक है।'' हम अंग के विषय में तब तक बात नहीं कर सकते जब तक कि संपूर्ण शरीर को ध्यान में नहीं रख लेते। अंग का अस्तित्व संपूर्ण से संबधित होने में ही है। हाथ तब तक हाथ नहीं जब तक किसी शरीर से जुड़ा न हो। इसी प्रकार मनुष्य तब तक मनुष्य नहीं, जब तक कि किसी राज्य से संबंधित न हो। वे आगे लिखते हैं कि राज्य–कल्याण और व्यक्ति कल्याण पृथक नहीं किये जा सकते। अतः अरस्तू ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ''राज्य का शरीरवादी सिद्धांत व्यक्तियों की स्थायी असमानता का अंकन है। वहाँ भी अनेक अंगों को मिलाकर एक पूर्ण की रचना की जाती है, वहाँ भी एक शासक व अन्य शासित होते ही हैं। इस प्रकार, यूनानी के लिए उसका वास्तविक महत्व समाज में उसकी उपयोगिता के दृष्टिकोण से था। यद्यपि वह उसके कार्य के निर्धारण में अपने आपको भी महत्वपूर्ण समझता था, तथापि यह एक तथ्य है कि यूनानी राजनीति–चिन्तन में व्यक्ति की धारणा की प्रधानता नहीं है और अधिकारों की संकल्पना संभवतः विकसित नहीं हो पायी थी। संभवतः इसका वास्तविक कारण यही रहा होगा कि चूँकि व्यक्ति समझता था कि वह संपूर्ण समाज के जीवन पर प्रभाव डाल सकता है, अतः उसने संपूर्ण के विरोध में अपने अधिकारों पर जोर देने का प्रयास नहीं किया। समाज में अपने मूल्य के नाते सुरक्षित होने के कारण उसे अपने निज के बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए नैतिक दृष्टिकोण आरम्भ करने और राज्य को एक नैतिक संस्था मानने के कारण यूनानियों ने ऐसे एक्य की कल्पना को थी जिससे अधिकांश आधुनिक चिंतन अपरिचित है। स्मरणीय है कि प्राचीन यूनानी समाज व राज्य एक दूसरे में गुथे हुए हैं। फलस्वरुप राजनीतिक कार्य सामुदायिक कर्त्तव्य का एक अंश मात्र है। यद्यपि कर्त्तव्य विशिष्ट के निर्वहन में योग्यता की विशिष्टता को महत्वपूर्ण माना जाता था।

अरस्तू 'पालिटिक्स' की तृतीय पुस्तक में लिखते हैं कि नगर (अथवा) राष्ट्र एक प्रकार का संघात् है, अतएव यह भी अन्य किसी अवयवी के समान अवयवों से घटित होता है– और राष्ट्र के पक्ष में उसके घटक अवयव उसके निवासी नागरिक ही हैं.....अतः हमें यह विचार करना चाहिए कि किसको नागरिक कहा जाय और वास्तव में नागरिकता है क्या? अरस्तू के अनुसार नागरिक के स्वरूप का विषय भी बहुधा विवादग्रस्त(अथवा संदिग्ध) रहा है। सब लोग नागरिक शब्द का प्रयोग एक ही अर्थ में नहीं करते। जो व्यक्ति जन–तंत्रात्मक शासन में

नागरिक होता है वही धनिकतंत्र शासन में बहुधा नागरिक नहीं होता। अर्थात् जिस नगर में जैसी व्यवस्था (एकराष्ट्तंत्र, श्रेष्ठजनतंत्र,धनिकतंत्र, जनतंत्र,तानाशाही) होती है, उसके अनुसार वैसी ही उसके नागरिक की परिभाषा होती है। उदाहरणार्थ श्रेष्ठजनतंत्र (अरिस्टोक्रैसी) में शिल्पी व श्रमिक को नागरिकता प्राप्त होना संभव नहीं था क्योंकि पद का वितरण सद्गुण व योग्यता के आधार पर होता था जबकि धनिकतंत्र में शिल्पी धनवान होते हैं। स्पष्ट है कि शासन–प्रणाली में परिवर्तन के साथ ही नागरिकता के मापदण्ड में परिवर्तन हो जाता था।

यही नहीं निवास स्थान के आधार पर भी किसी को नागरिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रवासी परदेशी और दास भी प्रकृति नागरिकों के साथ एक ही स्थान पर निवास करते हैं। इस नागरिकता के विवेचन में इन लोगों को भी नहीं सम्मलित किया जा सकता, जिन्हें नागरिक शब्द के यथार्थ अर्थ से भिन्न अन्य किसी अर्थ में नागरिक संज्ञा प्रदान की गई हो, जैसे कि वे लोग जिन्हें सम्मान के लिए नागरिक बना दिया गया है। और न वह व्यक्ति ही नागरिक हो सकता है जिसको अभियोग चलाने और अभियुक्त बनने के अतिरिक्त अन्य कोई वैध अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इस प्रकार के अधिकार का उपयोग तो संधि की व्यवस्था के द्वारा विदेशियों के द्वारा भी किया जा सकता है। अरस्तू के अनुसार नागरिक शब्द का एक विशिष्ट अर्थ ऐसा भी है जिसके अनुसार बालक तथा वृद्ध दोनों नागरिक कहला सकते हैं, पर यह नितान्त निर्विशिष्ट अर्थ नहीं है, प्रत्युत् बच्चों के पक्ष में हम नागरिक के साथ 'अविकसित' विशेषण जोड़ते हैं और वृद्धो के लिये 'गत्वयस' अथवा हमको किसी अन्य विशेषण का प्रयोग करना पड़ता है; पर हम किस विशेषण का प्रयोग करते हैं, इसमे कुछ धरा नहीं है, क्योंकि हमारा आशय बिलकुल स्पष्ट है। हम जिस नागरिक के स्वरूप का अन्वेषण कर रहे हैं, वह ऐसा व्यक्ति है जो इस शब्द के विशुद्ध निर्विशिष्ट रूप में नागरिक है तथा जिसके विषय में उस प्रकार के किसी दोषारोपण के सुधार अथवा परिहार की आवश्यकता नहीं है जैसे बालक और वृद्ध के पक्ष में अथवा जैसे नागरिकता के सम्मान से वंचित अथवा निर्वासित नागरिकों के पक्ष में किये जाते हैं और फिर उनका परिहार किया जाता है। इस ठीक नपे तुले अर्थ में नागरिक का अवच्छेदक इससे बढ़कर और कोई नहीं हो सकता कि–''एक आदमी जो न्याय के प्रतिपादन और शासनाधिकार में भागीदार हो।'' दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति किसी राष्ट्र के विचार–परिषद अथवा न्याय परिषद संबंधी शासन में भागीदार होने का अधिकार (निश्चित अथवा अनिश्चित अवधि तक) का उपयोग करता है वह हमारे द्वारा उसका नागरिक कहा गया है, और नगर उपर्युक्त प्रकार के नागरिकों का ऐसा समूह है जिसकी संख्या आत्मनिर्भरतापूर्ण जीवन की सत्ता के लिए पर्याप्त हो।

गौरतलब है कि यूनान कि नगर–राज्य की जनसंख्या मुख्यतः तीन वर्गों में बंटी हुई थी। ये वर्ग राजनीतिक और कानूनी दृष्टि से एक–दूसरे से बिलकुल भिन्न थे। यूनान के सामाजिक जीवन में दासों का स्थान सबसे नीचे था, जो संभवतः एथेंस की जनसंख्या का एक–तिहाई रहे होंगे। प्राचीन यूनान में दासता एक सार्वभौमिक प्रथा मानी जाती थी। यूनानी नगर में दूसरा मुख्य वर्ग प्रवासी विदेशी नागरिकों का था लेकिन इनका कानूनी रुप से देशीकरण नहीं होता था। ये विदेशी लोग पीढ़ी दर पीढ़ी रहने के बाद भी नागरिक समुदाय से बाहर ही रहते थे। सबसे अंत में नागरिकों का वह वर्ग आता है जो नगर–राज्य के सदस्य होते थे और जिन्हें उसके राजनीतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार था।

स्पष्ट है कि एथेंस और यूनान के अधिकांश राज्यों में दासों, स्त्रियों, प्रवासी विदेशी नागरिकों एवं निम्न वर्ग के लोग नागरिकता से

वंचित थें। अरस्तू जब कहते हैं कि व्यक्ति एक राजनीतिक प्राणी है और वह अपने व्यक्तित्व की संपूर्ण क्षमताओं का विकास केवल नगर–राज्य के कार्यों मे हिस्सा लेकर ही कर सकता है, तो यहाँ राज्य में जिसके हिस्सा लेने की बात अरस्तू करता है, वह नागरिक ही है। यहाँ प्रश्न उठता है कि दासों, स्त्रियों, प्रवासी विदेशी नागरिकों निम्न वर्ग आदि के नागरिकता वंचन का आधार क्या है? दूसरा, किन्हें नागरिक माना जाये या नागरिकता प्रदान करने का आधार क्या है?

अरस्तू के अनुसार राज्य के वैधानिक/न्यायिक कार्यों में हिस्सा लेने के लिए उच्च स्तरीय नैतिक तथा बौद्धिक श्रेष्ठता की आवश्यकता होती है, जिसे वह सद्गुण का नाम देता है। यह सद्गुण राज्य के सभी निवासियों में कभी नहीं होता। दास वर्ग नागरिकता की श्रेणी में नहीं आ सकता क्योंकि उसमें चितन की क्षमता नहीं होती। औरतें भी नागरिक नहीं हो सकती क्योंकि उनमें नागरिक जैसे सद्गुण नहीं हो सकते।25 (यद्यपि स्पार्टा में स्त्रियाँ राष्ट्र की क्रियाशील सदस्यायें होती थीं और राष्ट्र–कल्याण के कार्यों में भाग लेती थीं।) प्लेटो ने भी स्त्री को पुरूष के समान दार्शनिक होने में सक्षम व संरक्षक वर्ग में रखने के साथ ही पुरूष के सामान शिक्षा की भी वकालत की है। विदेशी निवासी भी नागरिक नहीं हो सकते क्योंकि वे किसी अन्य राज्य के नागरिक होते हैं। कहते हैं कि लाकैदायमौन् (स्पार्टा) के प्राचीन राजाओं के समय में वे (विदेशियों को) नागरिकता के अधिकार दे दिया करते थे, इसके परिणाम स्वरूप सुदीर्घकाल तक युद्ध करते रहने पर भी उन्होने जनसंख्या के ह्रास का अनुभव नहीं किया।;इद्ध यद्यपि इसकी सत्यता संदिग्ध लगती है, जिसे स्वयं अरस्तू ने आगे स्वीकार किया है। श्रमिक तथा कारीगर भी नागरिक नहीं हो सकते क्योंकि वे अधम जीवन यापन करत हैं। इसी तरह खेतिहार किसान भी नागरिक नहीं हो सकते क्योंकि उनके पास अवकाश (समपेनतम) का समय नहीं होता, जो नागरिकता का मूल आधार है।26 जहाँ तक नागरिकता की प्राप्ति का प्रश्न है, इसका आधार 'जन्म' माना जाता था। ''वह (नागरिक) ऐसा व्यक्ति है जिसके माता–पिता दोनों ही–न कि केवल कोई एक–नागरिक हों (अर्थात् जो नागरिक माता–पिता की संतान हो); अन्य लोग इस शर्त को और पीछे ले जाने पर–दो–तीन या इससे भी अधिक पितामहों की पीढ़ियों तक खोजने पर–जोर देते हैं। ''अरस्तू आगे लिखते हैं कि यदि अपने समय में वे हमारी परिभाषा के अनुसार शासन कार्य में भागीदार रहे हों तो निश्चयमेव नागरिक थे। जो लोग किसी नगर के आदिम निवासी अथवा संस्थापक हों उनके लिए नागरिक पिता से अथवा नागरिक माता से उत्पन्न होने की अर्हता की माँग करना स्पष्टतया असंभव है।27 तत्कालीन एथेंस के सविधान में नागरिकता प्राप्ति के प्रावधानों एवं अनकी शिक्षा–दीक्षा का उल्लेख अरस्तू ने 'पॉलिटिक्स' में किया है।

स्पष्ट है कि ग्रीक युग में नागरिकता के संदर्भ में नगर–राज्य बहुत ही संचेत थे और उनकी शिक्षा–दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। एथेंस की अपेक्षा स्पार्टा की शिक्षा–दीक्षा अधिक कठोर थी। यद्यपि यह शिक्षा तद् नगर–राज्य की शासन व्यवस्था के अनुरूप होती थी। ''इस विषय में तो किसी को कोई संदेह (दुविधा) हो ही नहीं सकता कि नियम–निर्माता को बच्चों की शिक्षा की अपना सबसे प्रमुख कर्न्तव्य बना लेना चाहिए। जिस नगर में ऐसा नहीं होता वहाँ की शासन–व्यस्था को हानि पहुँचती है। जिस नागरिक को जिस प्रकार की शासन–व्यस्था की छत्रच्छाया में अपना जीवन व्यतीत करना है उस नागरिक को (शिक्षा द्वारा) उसी साँचे में ढाल देना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक शासन–पद्धति का अपना विशिष्ट स्वभाव (करता है) और तत्पश्चात् उसकी सन्ता को सुरक्षित रखता है।29

अतः संक्षेप में, नागरिक होने के लिये आवश्यक है कि ऐसा पुरूष जो एक निश्चित (18वर्ष की) आयु प्राप्त कर चुका हो, वंशानुक्रम की दृष्टि से तद् पोलिस के नागरिक परिवार में जन्मा हो, कुटुम्ब की पित्रसत्ता प्राप्त हो और युद्ध की या अन्य निर्धारित योग्यता रखता हो; साथ ही दूसरे विशेषकर दासों के श्रम का मालिक हो। इसलिए लिंग, नस्ल और वर्ग के आधार पर नागरिकता का निश्चय किया जाता था। पारिणामस्वरूप बहुत बड़ी जनसंख्या नागरिकता के दायरे से बाहर थी–महिलायें (यद्यपि विवाहित एथेनियन स्त्रियाँ वंशानुक्रम कारणों ;ळमदमतंसवहपबंस चनतचवेमद्ध से नागरिक थीं 'बच्चे; प्रवासी विदेशी या डमजपबेष्–वे भी जिनके परिवार कई पीढ़ियों से ऐथेस में बसे हैं (यद्यपि वे वैधानिक रूप से स्वतंत्र थे, कर देते थे और सैन्य सेवा भी करते थे) इनके अलावा दास भी जिन्हें नागरिकता प्राप्त नहीं थी।30 यूनान में उपयोगिता के आधार पर कार्यों का यह विभाजन सकारण था।

गौरवतलब है कि अरस्तू नगर–राज्य के अन्तर्गत मानवीय गतिविधियों को दो भागों में बांटता है– पहला वे कार्य जो किसी अन्य कार्य को पूरा करने के लिये किये जाते हैं अर्थात् जो आत्म–संरक्षण के लिये किये जाते है, जैसे खेती करना, कपड़े सीना, खदानों में काम करना, मकान बनाना (श्रमिक व शिल्पी के कार्य) आदि। ये सभी कार्य लाभदायक परन्तु आवश्यक कार्य है। अरस्तू इन गतिविधियों को राज्य की आवश्यक शर्तों ;छमबमेंतल बवदकपजपवदेद्ध का नाम देता है। दूसरा, व्यक्ति कुछ अन्य कार्य भी करता है जो उसके जीने के लिए आवश्यक नहीं होते परन्तु उन्हें इसलिए किया जाता है क्योंकि वे करने योग्य हैं और जो किसी साध्य के लिये साधन नहीं होते, जैसे कविता लिखना, चित्रकारी करना या सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् जैसे उच्च मूल्यों की खोज। ऐसी गतिविधियों को अरस्तू 'अवकाश' ;स्मपेनतमद्ध की गतिविधियाँ कहता है अर्थात् ये कार्य केवल वही लोग कर सकते हैं, जिन्हें रोटी, कपड़ा मकान, जैसी रोजमर्रा की गतिविधियों की चिन्ता नहीं होती। राजनीति इन 'अवकाश' की गतिविधियो में से एक है अर्थात् शासन करने तथा सामाजिक सेवा संबंधी कार्यों को सम्पन्न करने की क्रिया जो अपने लिये नहीं दूसरों के लिये की जाती है। ऐसी कुछ अन्य क्रियाये हैं– युद्ध करने की क्रिया जिसमें साहस अथवा वीरता जैसे गुणों की अभिव्यक्ति होती है, सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने जैसी क्रिया जिसमें संयम अथवा उदारता जैसे गुणों में वृद्धि होती है, खेलकूद प्रतियोगितायें, नाटक मंचन, धार्मिक गतिविधियाँ, विज्ञान व दर्शनशास्त्र का अध्ययन आदि। इन गतिविधियों को अरस्तू 'राज्य का अंग' ;च्तज व िजीम ैजंजमद्ध का नाम देता है। ये कार्य केवल वही लोग कर सकते हैं जिनके पास इन्हें करने का अवकाश है। जहाँ ये लोग राज्य के अभिन्न अंग ;प्दजमहतंस चंतज व िजीम ैजंजमद्ध होते हैं, वही बाकी सभी वर्ग राज्य की आवश्यक शर्तें ;छमबमेंतल बवदकपजपवदे व िजीम ैजंजमद्ध होते हैं, जिनका कार्य ऐसा वातावरण प्रदान करना होता है, जिसमें राज्य के सक्रिय नागरिक दिन–प्रतिदिन की चिन्ताओं से ऊपर उठकर कार्य कर सकें।

अवकाश ;स्मपेनतमद्ध के लिये ग्रीक भाषा में 'स्खौले' तथा व्यापार के लिये 'अस्खौलिया' शब्द का प्रयोग किया गया है। किंतु यहाँ अवकाश का तात्पर्य निष्क्रियता कदापि नहीं है। अपितु अवकाश उच्चकोटि की चिन्तनात्मक क्रिया का नाम है, जो मानवता के विवेकांश की क्रिया है। इसका प्रतिपक्षी है 'व्यापार' या 'अस्खौलिया' जिसका अर्थ है ऐसे कार्य जो किसी अन्य उद्देश्य की सिद्धि के लिये किये जाते हैं। ग्रीक लोग चार गुणों को सर्वोच्च मानते थे। साहस और सहिष्णुता इन दो गुणों की आवश्यकता व्यापार में होती है। तत्वज्ञान विवेक की क्रिया अवकाश में अपेक्षित है। न्याय और संयम की आवश्यकता अवकाश (स्खौले) व व्यापार (अस्खौलिया) दोनों के ही साथ होती है।31 इसके

साथ ही अवकाश ;स्मपेनतमद्ध को शासक–शासित, दास–मालिक या शोषक–शोषित के चश्में से न देखकर तद्युगीन दृष्टि के संदर्भ में समझने की जरूरत है– क्योंकि समष्टि रूप में और व्यष्टि में मनुष्य का अंतिम लक्ष्य अभिन्न है। अतएव श्रेष्ठ शासन व्यवस्था का मानदण्ड भी एक ही होना चाहिए। इसलिए यह स्पष्ट है कि अवकाश के सदुपयोग का गुण उन दोनों (व्यक्ति व नगर) में होना चाहिए, क्योंकि जैसा हमने बहुधा कहा है, युद्ध का चरम लक्ष्य है शांति और व्यापार का लक्ष्य है अवकाश।32 यदि जीवन को सुखी बनाने वाले पदार्थों का ठीक उपयोग न कर सकना (सर्वदा) लज्जाजनक समझा जाता है, तो अवकाश काल में उनका ठीक–ठीक उपयोग न कर सकना तो और भी लज्ज जनक माना जायेगा। यह कितनी निन्दा योग्य बात है कि जो मनुष्य व्यापार काल में और युद्ध काल में तो अपने को अच्छा प्रदर्शित करें, वही शांति काल और अवकाश काल में दासवत् व्यवहार करे।33 इस प्रकार स्पष्ट है कि अवकाश कोई विशेषाधिकार मात्र नहीं था अपितु यह एक विशिष्ट कर्त्तव्य था जो विशिष्ट गुणों एवं त्याग की अपेक्षा करता था।

इस प्रकार यूनान के नगर–राज्य दीर्घजीवी रहे। यह कोई संयोग मात्रा नही था। अपितु इनका निर्माण पोलिस निर्माताओं एवं दार्शनिकों ने उच्च आदर्शों की पीठिका पर किया था, जो आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। बावजूद इसके यूनानी नगर–राज्यों के समक्ष दों समस्यायें आयीं–एक, चूँकि श्रेष्ठ जीवन का तात्पर्य राजनीति में भागीदारी के रूप में देखा जाता था और नगर–राज्य में भागीदारी अर्थात् नागरिकता कुछ ही लोगो तक सीमित थी। ऐसे में नागरिकता से वंचित वर्ग समय –समय पर विद्रोह करते रहते थे। इसका समाधान पोलिस नहीं कर सके। साथ ही एपीक्यूरियन्स जैसे विचारवाद ने लोगों में राजनीति के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा किया। दूसरा, नगर – राज्य स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता के नाम पर वैदेशिक मामलों में संकुचित दृष्टिकोण अपनाते थे और वाह्य आक्रामक शक्तियों से निपटने के लिए परिसंघ ;ब्वदमिकमतंजपवदद्ध की संकल्पना को साकार करने में असफल रहे। फलस्वरूप 359 ई0 पू0 में सिंहासनारूढ़ होते ही मैसिडोनिया के राजा फिलिप ने नगर –राज्य पर आघात करना प्रारम्भ कर दिया और आगामी बीस वर्षो में शनैः शनैः सम्पूर्ण यूनान पर अधिकार करके नगर राज्यों का अस्तित्व ही मिटा दिया उसके विश्व विख्यात यशस्वी पुत्र सिकन्दर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दी।

फिर भी यूनानी नगर –राज्यों की राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में नागरिकता एक अप्रतिम देन है। यूनानी नागरिकता को लेकर जितना संवेदनशील थे और जिस विशिष्टता के साथ अध्ययन प्रस्तुत किया वह राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अभूतपूर्व है। ग्रीक नागरिक व्यवस्था पर ही आधुनिक चिंन्तन टिका है। जब भी आधुनिक राजनीतिक चिन्तन या व्यवस्था के मूल्यात्मक अथवा आदर्शत्मक पहलु पर विमर्श होता है, तो उसमें ग्रीक नागरिकता पर दृष्टिपात करना अपरिहार्य हो जाता है। बीसवीं सदी के चिंतक राल्स जब यह उदघोषणा करते हैं कि किसी राज्य की सुव्यवस्था केवल उनकी बुनियादी संस्थाओं के न्यायपूर्ण होने पर ही निर्भर नहीं करती वरन् वह नागरिक की गुणवत्ता पर आश्रित होती है, इसमें ग्रीक नगर –राज्य के दार्शनिकों का मन्तव्य ही प्रतिध्वनित होता प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. Sabine George H. & Thorson Thomas L: "A History of Political Theory , Oxford & IBH Publishing Co. Pvt. New Delhi, 1973 P. 19"
2. वही पृ0 19.

3. बार्कर अर्नेस्ट : 'यूनानी राजनीतिक सिद्धांत', पृ0 21

4. सिनक्लेयर, वही पृ0 12.

5. Foster Michael B. : 'Master of Political thought', Vol I[st], (डा0 ओ0 पी0 गावा द्वारा अनुवादित) हिन्दी माध्यम कार्यावयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 1994: पृ0 17.

6. Plato : 'The Republic' (Translated by Desmond Lee), Penguin Books, 1974, P. 115.

   a. Sucrates is concerned to fined out what are the underlying principles of any society, even the simplest. He finds them to be two. First, mutual need. Men are not self-sufficient, they need to lev together in society. Second, difference of aptitude, and it is best for all good at different things, and it is best for all that each should concentrate on developing his particular aptitudes. in this sense, society with its regulations, is a natural growth.

7. वेपर सी0एल0:'राजदर्शन का स्वाध्ययन' किताब महल इलाहाबाद पृ0 7.

8. वही, फास्टर, पृ0 84.

9. वही, वेपर, पृ0 28.

10. वही, वेपर, पृ0 29.

11. वही, बार्कर, पृ0 10.

12. अरस्तू : 'राजनीति' (हिन्दी अनुवाद श्री भोलानाथ शर्मा) हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0 प्र0, लखनऊ, 1968, पृ0 214.

13. वही, अरस्तू, पृ0 213.

14. वही, अरस्तू, पृ0 235.

15. वही, अरस्तू, पृ0 214.

16. वही, अरस्तू, पृ0 216.